11

स्कूल के दिन

हिंदी में मूल या अनुवादित मैंने जो प्रमुख आत्मकथाएँ पढ़ी हैं उनमें महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, डा. राजेंद्र प्रसाद, बच्चनजी तथा कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी की आत्मकथाएं प्रमुख हैं। स्वामी श्रद्धानंदजी की **कल्याण मार्ग के पथिक** नामक आत्मकथा के पढ़ने की भी मुझे धुँधली-सी याद है। गोर्की, तथा रवींद्रनाथ ठाकुर की भी आत्मकथाओं के अनुवाद मैंने हिंदी में पढ़े हैं। अंग्रेजी में प्रेसिडेंट ट्रूमैन, प्रेसिडेंट निक्सन, हेनरी किसींगर, इसरायल की प्रधान मंत्री गोल्डा मायर, इंग्लैड के प्रधान मंत्री हैरॉल्ड बिल्सन, विक्टर ह्यूगो, बर्ट्रेड रसेल तथा अन्य अनेक कवियों, राजनेताओं और साहित्यकारों की आत्मकथाएँ पढ़ने का भी अवसर मैं पा सका हूँ। इधर अपने परम स्नेही मित्र मुरारीलालजी त्यागी की कठोर, सच्ची स्पष्टोक्तियों से भरी सुंदर आत्मकथा भी मैंने पढ़ी है। जीवनियाँ पढ़ने में मेरी विशेष रुचि है और मैंने जीवनियां बहुत पढ़ी भी हैं परंतु आत्मकथा और जीवनी में बहुत बड़ा अंतर है। आत्मकथा में व्यक्ति घटनाओं के पीछे अपनी मानसिक उथल-पुथल, शंका, आशंका, भय, चिंता आदि जिन मनोवृत्तियों का उद्‌घाटन करता है उनका जीवनी-लेखक अनुमान भर ही कर सकता हैं। वह किसी भी अर्थ में आधिकारिक नहीं कहा जा सकता। हम डायरी को भी आत्मकथा की कोटि में रख सकते है। जो लोग नियमित रूप से डायरी लिखते हैं वे भी अपने जीवन की सच्ची झाँकी उनके प्रकाशन द्वारा उपलब्ध करा देते है परंतु नियमित डायरी लिखना आत्मकथा लिखने से भी कठिन है। उसके लिए जिस मानसिक अनुशासन और सातत्य की अपेक्षा है वह विरलों में ही मिलता है। हिंदी में पद्मभूषण श्री सीताराम जी सेकसरिया की एक **कार्यकर्ता की डायरी** तथा श्री रामेश्वर जी टाँटिया की डायरी मैंने पढ़ी है जो रोचकता के साथ अपने युग की और उनके जीवन-संघर्ष तथा मानसिकता की पूरी झाँकी प्रस्तुत करती हैं। उन्हें हम आत्मकथा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दे सकते हैं। परंतु प्रतिदिन डायरी लिखना प्रत्येक दिन को दुबारा जीने के समान है। डायरी-लेखन द्वारा आत्म-विवेचन का भी प्रतिदिन अवसर मिलता रहता है। यह सातत्य-साधना सब के वश की बात नहीं है और प्रारंभ से ही डायरी लिखने

के कार्य का पालन मैं कभी स्वयं नहीं कर पाया हूँ। यह मेरा आलस्य, प्रमाद या चरित्रगत दोष ही समझा जा सकता है। यदि मैं डायरी लिखता तो स्कूल के और कालेज के जीवन की सही झाँकी प्रस्तुत कर सकता। आज तो सारी घटनाएँ मेरे मन में गड्डमड्ड होकर रह गयी हैं। इसलिए उस काल की कुछ चर्चा करके ही संतोष करूँगा। न तो मेरे पास बच्चनजी के जैसी स्मरणशक्ति है, न के. एम. मुंशी जैसी रोचक औपन्यासिक शैली जिससे छोटी-से-छोटी बात भी महत्त्वपूर्ण बन जाती है। उन विशेषताओं से भी लेखक और घटनाओं के महत्त्व की झलक मिलती रहती है। गद्य लिखने में मैं किसी विशिष्टता का दावा भी नहीं कर सकता। हो सकता है, काव्य के सृजन में कुछ सफलता मिली हो। परंतु उसके अंतिम निर्णय के लिए अर्थात् कवि के रूप में मुझे जो कुछ मिलना है उसके लिए भी प्रतीक्षा करनी होगी - **कौन जीता है तेरी जुल्फ के सर होने तक,** अतः, जो भी लिखूँगा उसके लिए जिगर के शब्दों में यही कहूँगा-

अश्कों को मेरे लेकर दामन पे जरा जाँचो
रह जाय तो मोती है, बह जाय तो दाना है

मैंने यही प्रयत्न किया है कि जो बातें रोचक हों, या किसी महत्त्वपूर्ण सत्य अथवा आदर्श को उजागर करें या मुझे आत्मतोष दें उन्हींको लिखूँ। यों तो अपने जीवन की बीती हुई सामान्य घटनाओं को याद करना या उन्हें दूसरों को सुनाना भी कम आत्मतोष नहीं देता है और मैं भी इस दुर्बलता से मुक्त नहीं हूँ। पर इन पृष्ठों में मैंने उपर्युक्त बातों पर ही विशेष ध्यान दिया है।

डायरी लिखनेवालों के लिए आत्मकथा लिखने के लिए घटनाओं का चुनाव करना आसान है। अब कंप्यूटर के युग में आत्मकथा को सँजोते जाना और समय पर उनमें से मोती के दाने ढूँढ लेना और सरल हो गया है, यदि उसकी रुचि और इच्छा हो। परंतु कंप्यूटर में भी नित्य घटनाओं एवं प्रसंगों को भरना ही होगा जिसके लिए भी यही कहना पड़ता है —

दर्दे-सर के वास्ते चंदन लगाना है मुफीद
उसका घिसना और लगाना, दर्दे सर यह भी तो है।

विपिन

अब मैं अपनी किशोरावस्था के दिनों में लौट चलता हूँ और सब से पहले स्कूल के अपने एक अलबेले बालसखा की झाँकी प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मुझे अपने साथ स्कूल के सहपाठियों में विपिन का नाम बरबस याद आ जाता हैं जो कवि-हृदय होने के कारण मेरा परम भक्त हो गया था। उसे उर्दू

के शेर और हिंदी की दर्जनों कविताएँ कंठस्थ थीं और स्वभाव से वह अत्यंत स्वच्छंद रुचि का था। उसके बड़े भाई हमारे स्कूल के प्रधानाध्यापक थे अतः स्कूल में तो उसे अगली कक्षाओं में चढते जाने से कोई रोक ही नहीं सकता था, रही बात मैट्रिक की बोर्ड-परीक्षा की। उसके विषय में विद्यालय भर में यही कहा जाता था कि यदि विपिन मैट्रिक की परीक्षा पास कर जायगा तो स्कूल की बेंच, कुर्सी, टेबुल सभी वह परीक्षा पास कर जायँगे। 'वह समय पर देखा जायेगा और बड़े भाई के प्रभाव का उपयोग करने से कोई-न-कोई उपाय निकल ही जायगा', यह सोचकर विपिन निश्चिंत था। और हुआ भी वही। किसी युक्ति से तीसरे दर्जे में मैट्रिक पास करके उसने एक सरकारी दफ्तर में अपने बहनोई की कृपा से प्रवेश पा लिया और जीवन उसी मस्ती और बेफिक्री से बिता दिया जिस मस्ती और बेफिक्री से उसने विद्यार्थि-काल बिताया था। वह आयु पूरी कर एक दिन सोया-सोया ही संसार से विदा हो गया। उससे संबंधित स्कूल के समय का एक रोचक प्रसंग याद आ रहा है जिससे उसके बिलक्षण चरित्र की झलक मिल जायगी। एक बार उसने किसी आगा से पाँच सौ रुपये कर्ज के लिए थे। रुपये लेकर लौटाये भी जाते हैं, यह तो उसने सीखा ही नहीं था। आगा भारत में प्रत्यक्षतः तो उन दिनों हींग बेचने का व्यवसाय करते थे परंतु उनकी आय का मुख्य स्रोत ब्याज पर रुपये लगाने का था। यों तो उन दिनों ब्याज की मासिक दर आठ आने सैंकड़े की थी परंतु आगा दो रुपये सैंकड़े से कम पर रुपये नहीं देते थे। वे सोने, चाँदी, गहने या किसी भी अन्य वस्तु को जामिन या मुचलके में रक्खे बिना, केवल उगाही करने की अपनी शारीरिक क्षमता के बल पर रुपये दे देते थे। इसी कारण उनके ब्याज की दर इतनी ऊँची रहती थी। बड़े गाढ़े समय पर विवश होकर ही लोग उनकी शरण में जाते थे। विपिन ने रुपये ले तो लिए पर देने को उसके पास क्या था! प्रतिष्ठित व्यक्ति का भाई होने के कारण आगा और कुछ तो कर नहीं सकता था, सारे मुहल्ले को सुना-सुनाकर धमकियाँ अवश्य दे जाता था। आगा जब बारबार तंग करने लगा तो विपिन ने हारकर एक ऐसी युक्ति सोची जो केवल वही सोच सकता था। उसने हमारी कक्षा के एक विद्यार्थी से अकेले में कहा कि वह लाठी कितनी जोर से बेंच पर पीट सकता है, यह दिखाये। उस विद्यार्थी ने बड़े जोर से लकड़ी की बेंच पर लाठी का आघात किया। विपिन ने कहा, 'यह तो बहुत अधिक जोर का आघात है। इससे हलका होना चाहिए। इससे तो मेरा सिर ही फट जायगा।' कई बार बेंच पर लाठी मारने का प्रयोग कराने के बाद उसने अपना चुनाव उस विद्यार्थी को बताकर कहा कि बस अब इतनी जोर से ही मेरे सिर पर लाठी का

प्रहार करो। लाठी सिर पर लगने से खून की धारा बह चली जिसे कपड़े से दबाकर उसने थाने में रपट कर दी कि उक्त आगा ने बकाया रुपये न दे सकने के कारण लाठी से मुझे मारा है। आगा अपने रुपयों की वसूली के लिए प्रतिदिन उसके यहाँ आता ही था और रुपये न देने पर जोर-जोर से सब को सुना-सुनाकर बड़ी-बडी धमकियाँ देता ही था, थाने में रपट होते ही पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। सारा मुहल्ला विपिन की ओर से गवाही देने को तैयार था। अंत में बहुत माफी माँगने पर और अपने पाँच सौ रुपयों से सदा के लिए हाथ धोने को तैयार होने पर ही उस गरीब की जान बची।

मेरा स्कूल नया था जिसमें नाटक आदि के आयोजनों की कोई परंपरा नहीं थी फिर भी एक वार्षिक-उपाधि वितरण के लिए नाटक, प्रहसन और संगीत आदि के आयोजनों की जो लंबी सूची तैयार की गयी थी उसकी मुझे अब भी याद है। मेरा एक अन्य सहपाठी रतनलाल जिसका व्यक्तित्व देखने में भव्य था, उस नाटक में सिकंदर की भूमिका में उतरा था। संस्कृत में गुरु-शिष्य के संवाद में मुझे शिष्य की भूमिका दी गयी थी। उस संवाद के विनोदपूर्ण कथोपकथन मुझे आज तक याद हैं। बचपन में मुझे घर पर अलख बाबू नामक शिक्षक पढ़ाने आया करते थे जो उस स्कूल के प्रारंभ करनेवालों में थे और जिनके कारण मैं उस नये स्कूल में आठ वर्ष की उम्र में ही छठे दर्जे में भरती कर लिया गया था। मुझे याद है, अंग्रेजी में बातें कर सकने की योग्यता के, अपने विशिष्ट रूप-रंग तथा अल्प वय के कारण मैं सारे स्कूल में कुतूहल का पात्र बन गया था। बड़े आदमी का पुत्र तो समझा ही जाता था। मेरे दर्जे के सभी विद्यार्थी मुझसे उम्र में चार-चार, पाँच-पाँच वर्ष बड़े थे, अतः मैं उनमें पूरी तरह हिलमिल नहीं पाता था और उनके सरस हास्य-विनोद में भी सम्मिलित नहीं हो पाता था। फिर भी उनसे संयुक्त परिवार के छोटे सदस्य का स्नेह और संरक्षण मुझे सदा मिलता रहता था। प्रारंभ से ही मेरी गंभीर प्रकृति के कारण कोई मुझसे हलका-फुलका विनोद करने का साहस नहीं कर पाता था। नवीं कक्षा में आने तक तो स्वामी नारायणानंदजी से अयोध्या सिंह उपाध्याय की प्रसिद्ध काव्यकृति **प्रियप्रवास** तथा लाला भगवानदीन की लिखी **अलंकार-मंजूषा** जैसी कठिन पुस्तकें पढ़कर और कविता रचने की अपनी विशेष क्षमता के कारण मैं अल्पवय का होते हुए भी साथ पढ़नेवाले विद्यार्थियों से अपने को श्रेष्ठ एवं विशिष्ट समझने लगा था। यदि दसवीं कक्षा पास करने पर अस्वस्थता के कारण पढ़ाई छोड़कर एक वर्ष मैं राजस्थान में जलवायु-परिवर्तन के लिए न चला गया होता तो 14 वर्ष की अवस्था में ही मैट्रिक की परीक्षा पास कर लेता। फिर भी 15वें

वर्ष में मैट्रिक पास करके कालेज में प्रवेश पा लेना कोई साधारण बात नहीं थी। मेरी छोटी अवस्था के कारण ही मुझे नाम लिखाने को ले जानेवाले मेरे एकाक्ष हरिबक्स मामाजी, ने जिनका वर्णन पहले आ चुका है, यह सोचकर कि मैट्रिक में अल्पवय के कारण मैं कहीं मैट्रिक की परीक्षा देने से रोक न दिया जाऊ, स्कूल में नाम लिखाते समय मेरी उम्र जन्मपत्री की उम्र से एक़-डेढ़ वर्ष बढ़ाकर लिखा दी थी। अस्वस्थता के कारण राजस्थान में पढ़ाई का एक वर्ष गँवाकर मैं पुनः अपने पुराने स्कूल में ही ग्यारहवें दर्जे में भर्ती हो गया। पिछले वर्ष उसमें ग्यारहवें दर्जे की स्वीकृति न होने के कारण मुझे दूसरे स्कूल में जाना पड़ा था। उस स्कूल का वातावरण मेरे लिए सर्वथा अपरिचित था और मैं वहाँ अपने को पूर्णतः अजनबी अनुभव करता था। मुझे उस स्कूल को छोड़कर राजस्थान जाने में तनिक भी पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ क्योंकि वहाँ मेरा कोई साथी नहीं था। पुनः राजस्थान से लौटने तक मेरे पुराने स्कूल को ग्यारहवें दर्जे की स्वीकृति मिल चुकी थी और मैं अपने पुराने विद्यालय में पुराने शिक्षकों के बीच पुनः पहुँचकर प्रसन्न हो गया। अपने पुराने स्कूल में दसवीं क्लास पास करके मैंने सब विद्यार्थियों में प्रथम स्थान पाया परंतु जब ग्यारहवे दर्जे में शहर के सब से प्रतिष्ठित जिला स्कूल में प्रवेश के लिए गया तो मुझे उस स्कूल में प्रवेश पाने के लिए अंग्रेजी और गणित की परीक्षा देनी पड़ी जिनमें मुझे ग्यारहवी कक्षा के अयोग्य घोषित कर दिया गया। जिला स्कूल के प्रधानाध्यापक की अंग्रेजी में की गयी उक्ति मुझे आज तक याद है— 'तुमने अपने स्कूल में सर्वोच्च स्थान पाया, लगता है, वहाँ का शिक्षा का स्तर बहुत ही निम्न कोटि का है।' विवश होकर मुझे हरानचंद्र हाइ स्कूल नामक दूसरे शिक्षालय में में प्रवेश लेना पड़ा था जिसे दो-तीन महीने बाद ही छोड़कर मैं राजस्थान चला गया था।